North Asian International Research Journal of Social Science & Humanities

ISSN: 2454-9827 Vol. 6, Issue- 8 August-2020

IRJIF I.F. : 5.010

Index Copernicus Value: 57.07 DOI NUMBER: 10.6947/2454-9827.2020.00009.9 Citation Index

A Peer Reviewed Refereed Journal

नवतत्वों का स्वरूप और उनकी पहचान

साध्वी डॉ.धर्मपुण्यशीलाजी म.सा. की शिष्या

■ साध्वी कीर्तिशीला

प्रत्येक दर्शन में इहलोक और परलोक आदि के विषय में तात्त्विक अनुशीलन एवं परिशीलन करने के पश्चात् उसके मूलभूत तत्त्वों की स्थापना की गई है। जैनदर्शन में केवल दो तत्त्व ही मूल तत्त्वों के रूप में स्वीकार किये गये हैं। वे तत्त्व हैं जीव और अजीव।[1] वस्तुतः यह दो तत्त्व ही जैनदर्शन के मूलाधार हैं। इन्हीं तत्त्वों के पारस्परिक समन्वय, आदान-प्रदान से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का रूप प्रत्यक्ष होता है। ठाणांग सूत्र में जीव राशि और अजीव राशि का उल्लेख है।[2]

जब तक जीव तत्त्व का अजीव तत्त्व से सम्बन्ध बना रहता है, तब तक वह जीवात्मा या संसारी जीव के नाम से अभिहित होता है, किन्तु ज्यों ही आत्यन्तिक रूप से जीव तत्त्व से अजीव तत्त्व का सम्बन्ध टूट जाता है, तभी वह शुद्धात्मा, परमात्मा या मुक्तात्मा कहलाने लगता है। मुक्तात्मा हो जाने पर फिर कभी अजीव से सम्बन्ध होने की संभावना नहीं होती है। जैनदर्शन में इस जीव तत्त्व का विवेचन बड़े विस्तार के साथ किया गया है। अनेक ग्रन्थ केवल इसी तत्त्व को लेकर लिखे गये उपलब्ध होते हैं। विस्तृत जानकारी के लिए जिज्ञासुओं को गोम्मटसार, जीवकाण्ड, समयसार, प्रवचनसार जैसे अध्यात्म ग्रन्थों का अनुशीलन करना चाहिए। इस लघु कलेवर संक्षिप्त निबंध में विस्तृत विवेचन संभव नहीं है।

अजीव तत्त्व जीव तत्त्व से विपरीत स्वरूपवाला है।[3] आत्मा के गुणों से विहीन जितने भी पदार्थ अस्तित्व में हैं, वे सब अजीव तत्त्व के अन्तर्गत आते हैं। जब आत्मा में इन पौद्गलिक कर्मों का आना प्रारम्भ हो जाता है, तब इस आगमन को दार्शनिक भाषा में 'आस्रव' तत्त्व की संज्ञा दी जाती है। इसके कारण ही जीव और अजीव तत्त्वों का सम्बन्ध होता है और जब तक यह सम्बन्ध बना रहता है, तब तक जीव संसारावस्था में ही रहता है। 'आस्रव' के कारण आते हुए कर्म आत्मा से चिपकते जाते हैं, बंधते जाते हैं और आत्मा इन कर्मों के बन्धन में निश्चित कालस्थिति तक बंधा रहता है। इसी बंधन का नाम है "बन्ध तत्त्व"।

किन्तु जब आत्मा अपनी साधना द्वारा कर्मों के आगमन को रोकने का प्रयास करता है तो उसे रुकने का नाम 'संवर', किन्तु संवर तत्त्व आत्मा के साथ बंध हुए कर्मों का क्षय करने में समर्थ नहीं होता। पूर्वबद्ध कर्मों का अभाव करने के लिए तपश्चर्या की आवश्यकता होती है और तपस्या द्वारा ही उन कर्मों का शनैः शनैः अभाव होता है। निर्जरा करते-करते जब कर्मों का आत्यन्तिक अभाव या फिर विनाश हो जाता है, तब आत्मा बन्धन से मुक्ति प्राप्त करता है। इस अवस्था का नाम 'मोक्ष' है। मोक्ष की प्राप्ति ही जीव का चरम लक्ष्य है। यही परम पुरुषार्थ है।

इस प्रकार ये जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष जैनदर्शन में सप्त तत्त्व कहे जाते हैं।[4]

जीवाजीवास्रवबन्धसंवर निर्जरामोक्षास्तत्त्वम्।।

जैन आगमों में तत्त्व नौ बताये गये हैं। जीव, अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष इस प्रकार नौ तत्त्वों का उल्लेख पाया जाता है।[5]

जीव तत्त्व- जिसमें उपयोग हो, उसे जीव कहते हैं। शास्त्रों में उपयोग के दो भेद हैं साकार और निराकार। साकार उपयोग ज्ञान है और निराकार उपयोग दर्शन।

अजीव- संसार के एकेन्द्रियादि समुच्चय जीवों में समुच्चय रूप से बारह उपयोग पाये जाते हैं। बारह उपयोगों में से एक भी उपयोग न मिले अर्थात् जो न किसी तरह से देखने की शक्ति रखता हो और न किसी प्रकार का ज्ञान ही उसमें सम्भव हो, उसे अजीव कहते हैं।

पुण्य- जिससे जीवात्मा को शुभ फल की प्राप्ति हो और जो आत्मा को पवित्र करे, उसे पुण्य कहते हैं।

पाप तत्त्व- पुण्य तत्त्व से बिल्कुल विपरीत है। पाप से जीव को अशुभ फल की प्राप्ति होती है।

आस्रव व संवर- इस जीवात्मा को अनादिकालीन भव-प्रवाह में बहाते रहने का काम आस्रव द्वारा होता है। कर्म पुद्गलों का आत्म प्रदेशों में प्रवेश कराने वाला यही एकमात्र द्वार है। जीव रूपी तालाब में कर्म रूपी जल भरने के लिए नालियों की उपमा आस्रव द्वार को दी जाती है[6] और आस्रव का निरोध करना ही संवर है।[7]

जैसे तालाब में आते हुए जल के मार्ग पर पाल (बांध) बांधने से नये जल का अंदर आना रुक जाता है, उसी प्रकार कुछ काल के लिये या यावज्जीवन के लिए तीनों योगों की दूषित प्रवृत्तियों को रोकने से नये कर्मों का बंध होना रुक जाता है। आस्रव के दो प्रकार होते हैं- (1) शुभ आस्रव और (2) अशुभ आस्रव। इसे ही प्रशस्त और अप्रशस्त भी कहते हैं और अपेक्षा से पुण्य-पाप भी कहते हैं। इन दोनों में सबसे पहले अशुभ आस्रव के निरोध का प्रयत्न किया जाता है, बाद में शुभ का। जैसे किसी जल के प्रवाह को रोकने के लिए बांध बांधा जाता है, परन्तु उसको बहने के लिए थोड़ी-सी जगह छोड़कर शेष भाग को बांध लिया जाता है और फिर उस छोड़ी हुई जगह को भी बांधना आसान होता है, उसी प्रकार पहले अशुभ प्रवृत्तियों को रोक कर शुभ की ओर प्रवृत्ति प्रारम्भ कर दी जाती है और बाद में शुभ प्रवृत्ति से भी निवृत्त होकर सम्पूर्ण आस्रव द्वार का अवरोध कर दिया जाता है।

निर्जरा- आत्मा के साथ लगे जो कर्म अपना फल देकर स्वयं निवृत्त हो जाते हैं, वह कर्म पृथक् पृथक् होने का एक प्रकार है जो प्राप्त स्थिति के अनुसार होता है। इस क्रिया में जीव को अपने पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु जो जीव कर्म पुद्गलों को आत्मा से अलग करने के लिए पुरुषार्थ पराक्रम करते हैं, उनके इस क्रिया को ही निर्जरा कहते हैं। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा गया है कि तप के द्वारा निकाचित कर्मों की भी निर्जरा हो जाती है।[8]

निर्जरा अकाम और सकाम, दो प्रकार की होती है। परिस्थिति के अनुसार भूख-प्यास सहन करने से कुछ कर्म हल्के होते हैं, परन्तु उसमें निर्जरा की इच्छा नहीं होती है। इसलिए उसे अकाम निर्जरा कहते हैं और कर्म रज को दूर करने की दृष्टि से आत्मा को तपाने के लिए इच्छापूर्वक तप किया जाता है, उससे कर्मों की जो निर्जरा होती है, उसे सकाम निर्जरा कहते हैं, जिससे आत्मा की स्वाभाविक शक्ति का विकास होता है और आत्मीय ज्योति का प्रकाश विकसित होने लगता है।

बंध तत्त्व- मलयुक्त खनिज स्वर्ण के समान यह जीव भी अनादि काल से कर्मबद्ध अवस्था में पड़ा हुआ है। मिथ्यात्व, प्रमाद, अविरति, कषाय और योग इस के सहचर बने हुए हैं। इनके कारण अभिनव कर्म आत्मप्रदेशों के साथ सतत संलग्न होते रहते हैं। जीव और कर्म के संश्लेषण को बंध कहते हैं।[9]

मोक्ष- कृत्स्नकर्मक्षयो मोक्षः[10] अर्थात् आत्मसम्बद्ध सम्पूर्ण कर्मों का क्षय मोक्ष कहलाता है। कर्मों के घाति और अघाति, ऐसे दो भेद होते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावारणीय, मोहनीय और अंतराय ये चार घाति कर्म भाव

मोक्ष कहलाते हैं और वेदनीय, आयु नाम तथा गोत्र ये अघाति कर्म द्रव्य मोक्ष हैं। घाति कर्मों में मोहनीय कर्म की स्थिति सबसे अधिक है एवं प्रभावशाली होने के कारण इसे कर्मों का राजा कहते हैं। इसलिए मुमुक्षु जीव संवर द्वारा नये कर्मों का आना रोक कर निर्जरा द्वारा संचित कर्मों को आत्मा से अलग करते हैं। संवर व निर्जरा ये मोक्ष के कारण हैं।[11] मोहनीय कर्म का निर्मूलन करते हैं और फिर अन्तर्मुहूर्त्त में शेष तीन घाति कर्मों का उन्मूलन कर देने से आत्मा की सम्पूर्ण ज्ञान-दर्शन शक्ति का विकास हो जाता है।

राग-द्वेष रूपी महानृप अपने दलबल सहित सदा के लिए पराजित हो जाता है, उस समय मुमुक्षु केवलज्ञान दर्शन रूपी अपूर्व ज्योति प्राप्त कर जीवन्मुक्त अवस्था का अनुभव करने लगते हैं। शेष चार अघाति कर्म के लिए अकिंचित्कर बन जाते हैं और जब आयुष्य कर्म की काल मर्यादा पूर्ण हो जाती है, तब सम्पूर्ण कर्मों से मुक्त होकर वह आत्मा अपनी स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन शक्ति के बल पर लोक के अग्रभाग में स्थित हो जाती है। इसे ही मोक्ष स्थान कहते हैं।[12]

मुक्त आत्माओं के विषय में कुछ विशेष बातें, जो खास रूप से जानने योग्य होती हैं, वे इस प्रकार हैं-

(1) संसार में आने के सभी कारणों के नष्ट हो जाने से पुनः संसार में जीव का आगमन कदापि नहीं होता।

(2) केवलज्ञान, केवलदर्शन इन उपयोगों से युक्त प्रत्येक असंख्यात प्रदेशी आत्मा स्वतंत्र रूप से विराजमान रहती है, किसी अन्य ज्योति में उसका विलीनीकरण नहीं होता।

(3) मुक्तात्माओं को आत्यन्तिक, ऐकान्तिक, निरूपम, नित्य और निरतिशय निर्वाण सुख (आत्मीय आनंद) शाश्वत रूप में प्राप्त रहता है।

नवतत्त्वों के स्वरूप समझकर उन पर श्रद्धा प्रतीति रखते हुए, जीवन में अमल में लाने से इहलोक और परलोक में कल्याण के भागी होंगे। इस प्रकार संक्षेप में नवतत्त्व का स्वरूप है।

संदर्भ सूची-

1. पन्नवणा 1
2. ठाणांगसूत्र, 2,4,95
3. (अ) ठाणांगसूत्र - 2, 1, 75 (ब) षड्दर्शन समुच्चय, हरिभद्र सूरि टीका, 162, पृ.248
4. तत्त्वार्थ सूत्र, उमास्वाति, अ.1, सू.4
5. (अ) उत्तराध्ययन सूत्र, अ.28, गा.4 (ब) स्थानांग सूत्र, अभयदेवसूरि टीका, ठा.9, पृ.422
6. स्थानांग सूत्र, अभयदेवसूरि टीका, स्था.5, उ.2, सूत्र 418, पृ.300
7. तत्त्वार्थ सूत्र, अ.9, सू.1, उमास्वाति
8. तत्त्वार्थ सूत्र, अ.9, सू.3, उमास्वाति
9. उत्तराध्यन सूत्र, अ.28, सू.14, नेमिचंदजी टीका
10. तत्त्वार्थ सूत्र, अ.10, सू.3
11. पंचास्तिकाय, गा.153, पृ.200
12. उत्तराध्ययन सूत्र, अ.29, गा.47

सम्पर्क सूत्र :
साध्वी कीर्तिशीलाजी म.सा.
C/o डॉ.तेजसिंह गौड़
एल-45, पटेल कॉलोनी,
अंकपात मार्ग, उज्जैन-456006 (म.प्र.)
मोबा. 9406650252